**ओ३म्**

**‘मैं ब्रह्म नहीं, अल्प, चेतन व बद्ध जीवात्मा हूं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हम इस जड़-चेतन संसार में रहते हैं। यह सारा जगत हमारा परिवार है। सभी जड़ पदार्थ हमें अपने गुणों से लाभ पहुंचाते हैं। हमें पदार्थों के गुणों को जानना है और जानकर उनका सदुपयोग करना है। हमारे वैज्ञानिकों ने यह कार्य सरल कर दिया है। उन्होंने जड़ पदार्थों को अन्यों की तुलना में कहीं अधिक जाना है और सभी पदार्थों के गुणों को जानकर उन्हें मानव जीवन को सहयोगी बनाने के लिए अनेक सुख-सुविधाओं की वस्तुएं बनाई हैं। उनके इस कार्य से हमारे पर्यावरण को भी हानि पहुंची है जिससे सारा संसार त्रस्त वा चिन्तित है। इससे बचने के उपाय खोजे जा रहे हैं। इसके साथ ही वैज्ञानिकों ने मानवता के विनाश की भी पर्याप्त सामग्री का निर्माण किया है जिसे युद्ध में प्रयोग होने वाली सामग्री कहा जा सकता है। हानिकारक रायायनिक खाद भी इनमें सम्मिलित है। यह सब होने पर भी हमारे वैज्ञानिक एवं हमारे मत-मतान्तरों के आचार्य मनुष्य व इसमें निवास करने वाली जीवात्मा को इसके के यथार्थ स्वरुप में अभी तक जान नहीं सके हैं। विज्ञान का क्षेत्र केवल भौतिक पदार्थों तक सीमित है। वर्तमान संसार में विज्ञान का विकास व उन्नति प्रायः पश्चिम के देशों में ही अधिक हुई है। वहां जो मत-मतान्तर प्रचलित हैं, वह एकांगी होने व ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरुप को पूर्णतया न जानने के कारण वैज्ञानिकों को सन्तुष्ट व सहमत नहीं कर सके जिससे वैज्ञानिकों ने ईश्वर व जीवात्मा के पृथक, अनादि, अमर, अविनाशी स्वरुप को मानना ही छोड़ दिया। इसके विपरीत आर्यावर्त्त भारत में आदि काल से ही ईश्वरीय ज्ञान वेदों की सुलभता के कारण यहां के ऋषि-मुनि व शिक्षित लोग ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरुप को जानते आये हैं और आत्मा की उन्नति के लिए वेद एवं वैदिक साहित्य के अनुसार जीवनयापन करते रहे हैं। महाभारत के बाद परा व अपरा अर्थात् आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान व विद्याओं का प्रचार प्रसार न होने के कारण अज्ञान व अन्धविश्वास उत्पन्न हो गये जिसके परिणामस्वरुप भारत और दूरस्थ देशों में अज्ञान व अन्धविश्वास पर आधारित नाना मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये। इस कारण ईश्वर व जीवात्मा का सत्यस्वरुप लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (1863-1883) में महर्षि दयानन्द ने व उसके बाद उनके अनुयायियों ने अपने पुरुषार्थ से वेदों के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किया और उसे देश व विश्व में फैलाया जिससे लोगों को ईश्वर व जीवात्मा सहित प्रकृति के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान प्राप्त हुआ। इससे लाभ यह हुआ कि मनुष्य योनी में जीवात्मा अपने कर्तव्य-कर्मों का निर्धारण कर जीवन के लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हुए इन्हें प्राप्त कर सकता है।

 लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत में स्वामी शंकराचार्य जी हुए हैं जिन्होंने अद्वैत मत का प्रचार किया। उनके समय में बौद्ध व जैन मत ने अपनी जड़े जमा ली थी और बहुत से वैदिक धर्मी लोग इन मतों से आकर्षित होकर इनकी शरण में जा चुके थे। यह मत वैदिक मतावलम्बियों के समान ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। इन मतों में ईश्वर के अस्तित्व के प्रति घोर अन्धकार होने के कारण इन्होंने ईश्वर को मानता व उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना छोड़ दिया था। स्वामी शंकाराचार्य जी ने इनसे ईश्वर के स्वरुप को स्वीकार कराने के लिए शास्त्रार्थ किये और संसार में केवल एक ईश्वर ही है, अन्य कोई पदार्थ यथा जीवात्मा व भौतिक पदार्थ जैसे यह दीखते हैं, नहीं है, का प्रचार किया। वह शास्त्रार्थ में इन मतों से विजयी हो गये जिससे उनके मत को सभी बौद्ध व जैन मतानुयायियों को स्वीकार करना पड़ा था। स्वामी शंकराचार्य जी जीवात्मा को ईश्वर का अंश मानते थे जो अज्ञानता के कारण ईश्वर से पृथक व्यवहार करता है तथा ज्ञान हो जाने वा अविद्या के नष्ट होने पर ईश्वर में ही मिल जाता या उसका उसमें विलय और समावेश हो जाता है। फिर उस जीवात्मा वा ईश्वरांश का पृथक अस्तित्व नहीं रहता। प्रकृति व भौतिक पदार्थों के पृथक अस्तित्व को न स्वीकार कर वह इसे ईश्वर की माया मानते थे जो कि वस्तुतः अस्तित्वहीन पदार्थ है। महर्षि दयानन्द सत्य ज्ञान व विद्याओं के जिज्ञासु थे। उन्हें गुरु विरजानन्द जी से जो ज्ञान व शिक्षा मिली थी वह यह थी कि ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति इन तीन पृथक-पृथक पदार्थों का अस्तित्व है। इन तीन शाश्वत व सनातन पदार्थो को त्रैतवाद के नाम से जाना व पुकारा जाता है। सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने इस अद्वैतवाद से जुड़े प्रश्नों को प्रस्तुत कर उनका समाधान किया है। इस लेख में भी हम वैदिक ज्ञान के आलोक में कुछ प्रश्नों के समाधान की चर्चा कर रहे हैं।

 अद्वैतवादियों का जीव के विषय में पक्ष है कि जीव व ब्रह्म, पृथक नहीं अपितु एक हैं जिनकी संज्ञा ब्रह्म या ईश्वर है। इसलिए वह जीव व जीवात्मा का निरोध व निषेध करते हैं। वह कहते हैं कि जीव के अस्तित्व न होने से उसके आवरण में आने, जन्म लेने व बन्धन में फंसने का प्रश्न ही नहीं है। उनके अनुसार जीवात्मा ईश्वर के गुणों व उसके स्वरुप का साधक न होकर उसे ईश्वर वा ब्रह्म की साधना की किंचित अपेक्षा नहीं है। जीव न बन्धन से छूटने की इच्छा करता है और न जीव की कभी मुक्ति होती है क्योंकि जब जीव है ही नहीं तो उसका बन्धन मानना ही गलत है और जब जीव का बन्धन हुआ ही नहीं तो मुक्ति को मानने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अद्वैतवादी मत के इन विचारों व मान्तयाओं को रेखांकित कर महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में उनका उत्तर वा समाधान प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि नवीन वेदान्तियों का यह कहना सत्य नहीं है क्योंकि जीव का स्वरुप अल्प होता है, इसलिए वह आवरण में आता है। यह अल्प परिमाण व आवरण ऐसा है कि इसके कारण जीव को ईश्वर व संसार का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। इस अल्प स्वरुप व परिमाण वाला होने से जीव का मुनष्य आदि अनेक योनियों में जन्म होता है और वह जीव पाप रूप कर्मों को करके फल भोगरूप बन्धनों में फंसता है। इन बन्धनों से छूटने हेतु जीव अनेक साधनों को करता है। दुःख किसी भी जीवात्मा की पसन्द नहीं है, इस कारण सभी जीव दुःखों से छूटने के लिए प्रयत्न करते हैं। दुःखों से छूटने के लिए जीव जिन-जिन वेद व शास्त्र विहित साधनों का आश्रय लेता है, उनसे वह दुःखों से निवृत्त होते हुए मुक्ति को प्राप्त होकर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होता है व सुख व आनन्द का भोग करता है।

 अद्वैतवादी प्रश्न करते हैं कि सुख व दुःखों को भोगना देह और अन्तःकरण के धर्म हैं, जीव के नहीं। उनका कहना है कि जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षी मात्र है। शीत व उष्णता का अनुभव उनके अनुसार शरीरादि के धम्र्म हैं, आत्मा तो निर्लेप है। इन आरोपों व शंकाओं का वैदिक समाधान है कि देह और अन्तःकरण जड़ पदार्थ हैं और यह चेतन तत्व जीवात्मा से पृथक हैं। इन देह और अन्तःकरण को शीत व उष्णता का भोग व अनुभव नहीं होता ऐसे ही कि जैसे पत्थर को शीतलता और उष्णता का अनुभव व भोग नहीं होता है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी शीत व उष्ण पदार्थों को स्पर्श करता है, उसी को इनका अनुभव वा भोग प्राप्त होता है। पत्थर के समान ही मनुष्य के प्राण भी जड़़ हैं। न प्राणों को भूख लगती है न पिपासा, किन्तु प्राण वाले जीवात्मा को क्षुधा व तृषा (भूख व प्यास) लगती है। प्राणों के समान ही मनुष्य का मन भी जड़ है। न मन को हर्ष, न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष, शोक, दुःख, सुख का भोग मन अपने लिए नहीं अपितु जीव को कराता है वा जीव करता है। जैसे बाह्य क्षोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दुःखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार से संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करने वाला **‘जीवात्मा’** दण्ड और मान्य का भागी होता है। उदाहरण के रुप में जैसे तलवार से मारने वाला **‘मनुष्य वा जीवात्मा’** दण्डनीय होता है, तलवार नहीं होती वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कत्र्ता जीव सुख-दुःख का भोक्ता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कत्र्ता व भोक्ता है। जीवात्मा ही अन्तःकरण व इन्द्रियों को भोग में प्रवृत्त करता है इसलिये कर्मों के पाप व पुण्य के अनुसार इनका भोक्ता भी जीवात्मा ही होता है। जीवात्मा वा मनुष्य के कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है। जीवात्मा न तो ईश्वर है और न जीवों अर्थात् अपने ही किए कर्मों का साक्षी मात्र हैं। ईश्वर ही साक्षी है और जीवात्मा कर्त्ता, भोक्ता व साक्षी है।

 इस विवेचन से जीवात्मा का ईश्वर से पृथक अस्तित्व सिद्ध होता है। जीवात्मा साक्षी नहीं अपितु पाप-पुण्य रूपी कर्मों का कर्ता है और ईश्वर उसके कर्मों का साक्षी व फल प्रदाता है। मैं, मुनष्य, जीवात्मा हूं। मेरा शरीर मुझ जीवात्मा का शरीर है जो कर्मो को करने व फल भोगने के लिए ईश्वर से मिला है। जीवात्मा से शरीर व इसकी इन्द्रियों को प्रेरित कर कर्मों को करके मैं इनके फल भोग में फंसता हूं। सभी मनुष्यों को निरासक्त भाव से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा दैनिक अग्निहोत्र आदि वेदविहित पुण्य कर्मों को करके अपनी जीवात्मा को बन्धन व दुःखों से मुक्त करना चाहिए और साथ हि परमानन्द स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधन व प्रयत्न करने चाहिये, तथा **‘मैं ब्रह्म हूं’**, इस मिथ्या उक्ति से बचना चाहिये।।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**